Mitra Sadhana Shikshan Prasarak Mandal's

Rajarshi Shahu Arts, Commerce and Science College Pathri

Tq: Phulambri Dist : Aurangabad – 431111, (MS), India

One Day National Level Conference

On

"वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति"

2nd February 2019

Organized by

Department of Hindi

Rajarshi Shahu Arts, Commerce and Science College Pathri

Tq: Phulambri Dist : Aurangabad – 431111, (MS), India

Executive Editor

Principal, Dr. S. B. Jadhav

Chief Editor

Dr. D. N. Phuke

Co - Editor

Mr. B. T. Shelke

Electronic Interdisciplinary International Research Journal (EIIRJ)

A Peer Reviewed Journal

SJIF Impact Factor 6.21 **ISSN : 2277-8721**

One Day National Level Conference

On

"वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति"

2nd February 2019

Organized by

Department of Hindi

Rajarshi Shahu Arts, Commerce and Science College Pathri.

Tq: Phulambri Dist : Aurangabad – 431111, (MS), India

Executive Editor	**:**	**Principal, Dr. S. B. Jadhav**
Chief Editor	**:**	**Dr. D. N. Phuke**
Co editor	**:**	**Mr. B. T. Shelke**

Published by : Aarhat Publication & Aarhat Journal's

Mobile No : 9922444833 / 8355852142

28nd February 2019

ISSN : 2277- 8721

© Mitra Sadhana Shikshan Prasarak Mandal's
Rajarshi Shahu Arts, Commerce and Science College Pathri.

Executive Editor : Principal, Dr. S. B. Jadhav

Chief Editor : Dr. D. N. Phuke

Co editor : Mr. B. T. Shelke

EDITORS :

Disclaimer :

The views expressed herein are those of the authors. The editors, publishers and printers do not guarantee the correctness of facts, and do not accept any liability with respect to the matter published in the book. However editors and publishers can be informed about any error or omission for the sake of improvement. All rights reserved.

No part of the publication be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted any form or by any means electronic, mechanical, photocopying, recording and or otherwise without the prior written permission of the publisher and authors.

19	प्रा. डॉ. उत्तम जाधव	विश्वपटल पर हिंदी की स्थिति	68 - 71
20	डॉ. दत्तात्रय येडले	हिंदी उपन्यास गोदान में व्यक्त किसान विमर्ष	72 - 74
21	डॉ. बालाजी जोकरे	वैश्वीकरण में हिंदी	75 - 78
22	प्रा. डॉ. सुरेखा प्रे. मंत्री	वैश्विकरण का अर्थ और विशेषताएँ	79 - 82
23	सुनंदा तुकाराम सालवे	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति का अंतराष्ट्रीय स्वरूप	83 - 84
24	डॉ. दत्ता शिवराम साकोळे	वैश्वीकरण और हिंदी कहानी	85 - 88
25	डॉ. गोविंद बुरसे	हिंदी भाषा और साहित्य का वैश्वीकरण : कुछ पहलू	89 - 91
26	कु. पल्लवी अंकुशराव शेळके	वर्तमान हिंदी उपन्यासों में नारी की समस्या	92 - 93
27	संतोष नागरे डॉ. रजनी शिखरे	वैश्वीकरण : साहित्य, समाज और संस्कृति	94 - 99
28	डॉ. यशवंते एस. जे.	वैश्विकरण के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की वर्तमान स्थिति : कानून के संदर्भ मे	100 - 102
29	डॉ. के. वी. कृष्णमोहन	ममता कालिया कृत दौड़ में ''वैश्वीकरण'' : एक अध्ययन	103 - 104
30	सौ. सुरेखा एस. लक्कस	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा	105 - 109
31	डॉ. राऊत शारदा	साहित्य में स्त्री की प्रतिमा	110 - 115
32	सहा. प्रा. तोंडाकुर लक्ष्मण पोतन्ना	हिंदी और मराठी उपन्यास : भूमंडलीकरण बनाम आदिवासी संकट	116 - 120
33	प्रा. श्रीमती पोटकुले हिरा	नासिरा शर्मा का साहित्य और वैश्वीकरण	121 - 123
34	डॉ. सिंधू हालदे (रेड्डी)	सुमित्रानंदन पंत के काव्य में 'स्त्री' : पुनर्मूल्यांकन	124 - 127
35	प्रा. आर. व्ही पोपळघट	वैश्वीकरण, संचार माध्यम और हिन्दी भाषा	128 - 130
36	प्रा. डॉ. काकडे परमेश्वर जिजाराव	सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी भाषा	131 - 133
37	प्रा. तुकाराम पाराजी गावंडे	हंदी में दलित साहित्य	134 - 137

वैश्वीकरण : साहित्य, समाज और संस्कृति

संतोष नागरे
सहा. प्रा.हिंदी विभाग,
र.भ.अट्टल महाविद्यालय, गेवराई जि.बीड

डॉ. रजनी शिखरे
उपप्राचार्य तथा हिंदी विभागप्रमुख,
र.भ.अट्टल महाविद्यालय, गेवराई जि.बीड

समूचे विश्व को एक ही अर्थनीति के तहत एकत्र लाना वैश्वीकरण है। वैश्वीकरण एक तरह से आर्थिक साम्राज्यवाद है, जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से फल–फूल रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियॉ बाजार, मीडिया तथा विज्ञापन के सहारे अपनी काली दुनिया का काला साम्राज्य फैला रही है।मीडिया का अंतरजाल मध्ययुगीन संतों के मायाजाल से भी भयावह है। वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति अर्निबंध अर्थमंथन को बढावा देती हुई मनुष्य को उपभोक्ता बनने के लिए विवश करती है। इस संस्कृति ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक परिवेश को प्रभावित किया। वैश्वीकरण के इस रंग में रंगकर भाषा, साहित्य, समाज तथा संस्कृति बेरंग होती जा रही है।

वैश्वीकरण के इस क्रूर चेहरे को बेनकाब करते हुए डॉ. लोकशचंद्र कहते हैं,– ''वैश्वीकरण का अर्थ विश्व–विजय है, इसमें अलग–अलग तंत्रों की अलग–अलग राष्ट्रों की भागीदारी नहीं। वैश्वीकरण एकेश्वरवाद का रुपांतरण है जिसमें अनेक राष्ट्रीय अस्मिताओं को, विभिन्न मूल्य बोधों को समाप्त कर अधिनायकवाद की स्थापना है। इसके लिए मनुष्य जाति की आर्थिक–लिप्सा और विलासिता की मोहमाया को, उपभोक्तावाद, उदारीकरण और फैशन की लुभावनी नग्नता, उपयोगिता और उदारता के आकर्षक शब्दों से भडकाया जा रहा है। एक विश्व के नाम पर सब राष्ट्रों को आर्थिक, सांस्कृतिक और सुरक्षात्मक दासता में बॉधा जा रहा है। संस्कृति की अवधारणा को प्रश्न बनाकर एशिया को, यूरोपिय जातियों को, भ्रम जाल में फैलाया जा रहा है। मोहिनी शब्द– माया में, भडकीले चित्र निरुपन में, समाचार–पत्रों के दिन–प्रतिदिन आघातों से मनुष्य के मन का बाजारीकरण हो रहा है। पूँजीवाद का यह जघन्य पक्ष है, जो प्रदूषण से भी अधिक घातक है।''[1] वैश्वीकरण के इन विभिन्न खतरों को हिंदी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से बयान किया।

वैश्वीकरण की इस संस्कृति को फैलाने में मीडिया की अहम भूमिका है। इस संस्कृति की चकाचौंध ने मनुष्य को अंधा बना दिया है। यह मायावी नगरी वास्तविकता से दूर हमें सपनों की दुनिया में भटकाती है। मीडिया की तरह सनसनी, मनोरंजन और उत्तेजना फैलानेवाला साहित्य लिखा जा रहा है। चारदीवारी के भीतर की दुनिया आत्मकथात्मक साहित्य के माध्यम से बाहर आ रही है। जो न ज्ञानवर्धक है न ही दिशादर्शक। वैश्वीकरण के इस आभासी जगत में सत्य सुनने के लिए कोई तैयार नहीं। यहॉ हर तरफ झूठ का बोलबाला है तो सत्य का मूँह काला है। सत्य के लिए शोषणकारी व्यवस्था के विरुध्द आवाज उठानेवालों के कातिल समाज में खुले आम घूम रहे हैं। तो दूसरी ओर देश को चुना लगाकर भागनेवाले भगोडियों को मीडिया नायकत्व प्रदान कर रहा है। इसलिए सत्य सुनना, बोलना और लिखना अपने आप में जोखिम भरा काम है। क्योंकि इस समय नाटय लेखन, अभिनय और प्रस्तुति सब खतरे में हैं। विमलकुमार 'सूत्रधार' कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की पोल खोलते हुए कहते हैं,–

''नाटय समीक्षकों !
अगर भारतीय रंगमंच को बचाना है
तो कुछ–न–कुछ आप लोगों को भी करना होगा
इस समय नाटय लेखन / अभिनय / प्रस्तुति
सब खतरे में है।''[2]

वैश्वीकरण से उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति व्यावहारिकता की नींव पर खडी है। जिसने मनुष्य को उपभोक्ता बना दिया है। बाजार की मॉग के अनुसार मनुष्य अपने– आप को ढाल रहा है। इंसानियत– का स्थान इस बाजारु संस्कृति में झूठ, छल, कपट, जंग, तकरार ने लिया है। मानवीय मूल्य तथा संवेदना रहीत मनुष्य को इस उपभोक्तावादी संस्कृतिने एक वस्तु बना दिया है। संसार की इस सच्चाई को बयान करते हुए कृष्णकुमार 'नाज' कहते हैं,–

''झूठ है, छल है, कपट है, जंग है, तकरार है
सोचता रहता हूँ अक्सर, क्या यही संसार है।
जहन से उलझा हुआ है मुद्दतों से इक सवाल
आदमी सामान है या आदमी बाजार है।''[3]

मनुष्य का सदियों से प्रकृति के प्रति रागात्मक रिश्ता रहा है। बाजारवाद की इस संस्कृति में मनुष्य और पक्षियों के सहज सम्बन्धों में भी व्यावहारिकता स्पष्ट दिखाई दे रही है। राकेश रंजन कहते हैं,–

''सोन चिरैया ! सोन चिरैया ! / उडने में कैसा लगता है ?
मुफ्त नहीं बोलूँगी, भैया / कहने की पैसा लगता है।''[4]

वैश्वीकरण के इस दौर में उपेक्षित वर्ग साहित्य के केंद्र में आ गया है। वैश्वीकरण के इस दौर में नारी आज भी पुरुषप्रधान संस्कृति के दोगले मानदण्डों से आहत है। नारी जीवन का इतिहास मूलतः पीडा का इतिहास है। नारी के गूँगेपन को उसके अलंकार के रुप में चित्रित किया गया। सिंकने, सीझने, पकने के बीच झेलने को हुनर ही स्त्री जीवन है। स्त्री जीवन की व्यथा– कथा को बयान करती कात्यायनी कहती हैं,–

''सिंकने / सीझने, पकने के बीच / झेलने का हुनर
सहस्त्राब्दियों का इतिहास।''[5]

वैश्वीकरण ने संयुक्त– परिवार व्यवस्था को तहस–नहस किया। 'गिव एंड टेक' तथा 'युज ॲड थ्रो' की इस संस्कृति में पारिवारिक मूल्य टूट रहे हैं। समाज में हर जगह अब एकल परिवार का बोलबाला है। परिवार से स्नेह सूखता जा रहा है। आउट डेटेड दवाईयों की तरह बूढे मॉ– बाप को घर के किसी कोने में डाल दिया जा रहा है, या फिर घर से दूर वृध्दाश्रम भेजा जा रहा है। बिना काम के बूढे मॉ–बाप बच्चों को बोझ लगने लगे हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति में पली–बढी आज की पीढी मॉ की ममता की खुशबू से अनभिज्ञ है। दो पीढियों के अंतराल तथा रिश्तों में आ रही गिरावट को अधोरेखित करते हुए डॉ.जयप्रकाश कर्दम कहते हैं,–

''मेरे बच्चों को भी /तुम पसंद नहीं हो/उनके लिए आउट डेटेड हो
उनमें से कोई भी दो घडी / तुम्हारे पास बैठने के लिए राजी नहीं है

बदबू आती है उन्हें / तुम्हारे शरीर और कपडों से
शायद वे भी / इस बात का मर्म नहीं जानते
कि मां का आंचल सदैव / ममता की खुशबू से भरा होता है
मां के शरीर से कभी बदबू नहीं आती /शायद जान भी नहीं पाएंगे वे
इस माम को क्योंकि /तुम उनकी मां नहीं मेरी मां हो।''[6]

मां और माम के संस्कारगत अंतर को डॉ.कर्दम ने सूक्ष्मता से अधोरेखित किया। वैश्वीकरण से उपजी विज्ञापन संस्कृति नारी देह को प्रदर्शित करती हुई उसकी आत्मा की आवाज को दबा रही है। नारी श्रम संस्कृति की संवाहक है। श्रम करती हुई नारी अत्यधिक सुंदर होती है। किन्तु आज श्रम का अवमूल्यन हो रहा है। हमारे यहॉ पश्चात्य संस्कृति के अनुकरण पर नववर्ष 31 दिसम्बर को बडी धूम–धाम के साथ मनाया जाता है। बाजार में हर तरफ रौनक छायी होती है। सुरा–सुंदरियों के नाच–गान से जहॉ एक ओर स्वर्ग सुख की अनुभूति होती है, वहीं दूसरी ओर संघर्षशील आम–आदमी नारकीय जीवन जीने के लिए विवश है। कारपोरेट, मॉल, सेल, डिस्काउंट, पार्लर–पार्सल पॅकेज तथा मार्केट संस्कृति ने सर्वहारा वर्ग की उपजीविका के साधन छिनकर उन्हें तबाह कर दिया। इस तबाही के कारण ही अमीर और गरीब के बीच की दूरी दिनों–दिन बढती जा रही है। वैश्वीकरण की इस भयावहता के संदर्भ में प्रभाकर क्षोत्रिय कहते हैं,– ''यह केवल दस–बीस प्रतिशत पूँजीपति वर्ग और उच्च मध्यवर्ग के भोग–विलास का विश्वजाल है।''[7] नए साल के आगमन पर सिंघाडे बेचनेवाली स्त्री अपने नारकीय जीवन से मुक्ति चाहती है। श्रमजीवी, किसान, मजदूर तथा सर्वहारा वर्ग की यातनामयी जीवनगाथा को सिंघाडे वाली की जबरियॉ हॅसी के माध्यम से अभिव्यक्त करती हुई नीलेश रघुवंशी कहती हैं,–

''नए साल के आगमन पर पूछा गया सिंघाडे बेचने वाली से
नए साल के बारे में क्या सोचा तुमने
सिंघाडे बेचती स्त्री ने कहा / नए साल में हम खुट जाएँ
खुट जाएँ मतलब.... / खुट जाएँ मतलब खुट जाएँ याने हम मर जाएँ
ही ही हा हा ही हा / अरे अरे ए ऐसा नहीं कहते
हॅसी ठसक से सिंघाडे वाली मुश्किल से जबरियॉ हॅसी को रोकती बोली
क्यों खुटने से डरते हो ???
हम तो रोज खुटते हैं..... ।''[8]

आतंकवाद आज की प्रमुख समस्या है। आतंकवाद धर्म का विकृतरुप है। आतंकवाद के कारण ही स्वर्ग सी दुनिया नरक बनती जा रही है। प्रभाकर क्षोत्रिय इस संदर्भ में ठीक ही कहतें हैं,– ''धर्म केवल जडता और साम्प्रदायिकता फैलाने के काम आ रहा है। दुनिया के दो बडे धर्म युध्द और आतंकवाद का नृशंस खेल खेल रहे हैं।''[9] धार्मिक उम्माद तथा साम्प्रदायिकता की आग में इंसानियत झुलसकर राख हो रही है। निर्दोष तथा मासूमों के खून से यह धरती रक्तरंजित होते हुए सृष्टि का रचयिता देख रहा है। वस्तुतः ईश्वर इस सृष्टि का सर्जक, पालक तथा संहारक है। अतः सभी घटित घटनाएँ उसी की लिलाएँ मान ली जाए, तो आतंकवादी घटनाओं का मास्टर माइंड भी ईश्वर ही होगा। हिंसा और आतंक की जडों को मिटाने के लिए ईश्वर को कैद और अल्हाह को फॉसी पर लटकाना होगा। डॉ.जयप्रकाश कर्दम कहते हैं,–

''आतंक का सैलाब / मासूमों के खून से रंगे है उसके हाथ
दुनिया से हिंसा और आतंक मिटाना है
इसे रहने लायक बनाना है तो / हिंसा और आतंक की जडों को मिटाओ
ईश्वर को कैद में डालो / अल्हाह को फॉसी पर लटकाओं।''[10]

वैश्वीकरण के इस दौर में विश्व को एक कुटुम्ब के रुप में देखा जाता है। फिर भी यहॉ का समाज जाति–पाति, उच–नीच, छुआ–छूत के अभिशाप से ग्रस्त एवं त्रस्त है। भाषावाद, प्रांतवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाई–भतिजावाद देश की एकता और अखंडता के लिए खतरा है। जाति, आरक्षण तथा ऑनर किलिंग के नाम पर आये दिन इस देश में कई अमानवीय घटनाएँ घट रही है। जाति के नाम पर यहॉ का दलित नारकीय जीवन जीने के लिए विवश है। वैज्ञानिक अविष्कार से मनुष्य चॉद तथा मंगल ग्रह पर बस्ती बसाने जा रहा है। लेकिन सदियों से बस्तियों से बाहर रहनेवाले दलित आज भी वहीं–के–वहीं हैं। एक ओर जातिव्यवस्था के कारण उन्हें बस्ती के भीतर प्रवेश निषिध्द है तो दूसरी ओर पढा लिखा आत्मकेंद्रित दलित अपनी बस्ती से कोई सरोकार नहीं रखता। परिणामतः दलितों की बस्ती अपने उध्दार की प्रतीक्षा में आज भी है। डॉ.जयप्रकाश कर्दम कहते हैं,–

''बन्द कर मेरी रौशनी के सूराख / वे उजालों की सैर करते हैं
वसुधैवों को कुटुम्ब बतानेवाले / जाति–वर्णों में बंटे फिरते हैं।
खूब आता है सताने का सलीका उनको
न्याय के नाम पर वोदंड दिया करते हैं
किसने किसको क्या दिया, लिया, छीना
बात उठती हैं तो परेशान हुआ करते हैं
सुना है चॅद और मंगल पर बसेगी बस्ती
कहां होंगे जो बस्तियों से बाहर रहते हैं।''[11]

सदियों से बस्तियों से बाहर रहनेवाले दलितों की तरह इस देश के मूल निवासी आदिवासी भी वैश्वीकरण से पीडित है। आर्थिक विकास के नाम पर पूँजीपतियों ने आदिवासियों के प्राकृतिक संसाधनों को लूटा। जल, जमीन और जंगल का अमर्याद दोहन किया। बडे–बडे बांध, सेझ, उद्योमों के लिए भूमि अधिग्रहण करते हुए आदिवासियों को जंगल से बाहर खदेड दिया। परिणामतः उनका अस्तित्व ही खतरे में आ गया। आदिवासियों के मांस को नोंच – नोंच कर खानेवाले पूँजीपति गिध्दों ने उन्हें अस्थिपंजर बनाकर छोडा। कुपोषण इसी का विकराल रुप है। पूँजीवादी व्यवस्था ने इस देश के मूल निवासी आदिवासियों को उनके घर, द्वार, खेत, खलिहान, भाषा, संस्कृति, अध्यात्म, जंगल, पहाड, नदी, झरने, पेड, पत्ते, हवा आदि से बेदखल किया। पूँजीपतियों की विनाश – लीला को बयान करते हुए महादेव टोप्पो कहते हैं,–

''वैसे सब कुछ से किया तुमने बेदखल
घर, द्वार, खेत, खलिहान, भाषा, संस्कृति, अध्यात्म
जंगल, पहाड, नदी, झरने, पेड, पत्ते, हवा–सब कुछ
शरीर का मांस नोंच लेने के बाद / और क्या लोगे?
हमारी अस्थियॉ? देंगे जरुरत पडी तो वह भी

लेकिन तुम / इस धरती को चिथडों में लपेटकर
पवित्र नदियों को गन्दे नाले में बदलकर
इसे बचाने का जब करते हो नाटक
तब आता है घुस्सा।''[12]

पूँजीपति राजनेताओं की मिली–भगत ने स्वर्ग सी इस धरती को चिथडों में बॉटकर उसे बेइज्जत किया है। विकास के नाम पर मैली हुई नदियों को बचाने का नाटक किया जा रहा है। प्रकृति तथा संस्कृति को उजाडकर उसे विकृत किया जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियॉ तथा बडे–बडे उद्योग समूह के काले कारनामों को बेनकाब करते हुए प्रभाकर क्षोत्रिय कहते हैं,– ''बहुराष्ट्रीय कंपनियॉ, बडे–बडे उद्योग अपने स्वार्थ में इतने लिप्त है कि उनसे होनेवाले पर्यावरण प्रदूषण की उन्हें कोई चिंता नहीं रही है, अमृत प्रवाही नदियॉ नालों में बदल रही है, बादलों ने मुँह मोड लिया है अथवा दिशाएँ बदल दी हैं, गल्फस्ट्रीम पिघल रही है लेकिन इन बातों की चिंता भूमंडलीकरण के नियामकों को नहीं है।''[13] प्राकृतिक विध्वंस के कारण ही आए दिन सूखा, बाढ, ओले, प्रलय, भूस्खलन, सुनामी, ऋतु परिवर्तन जैसी घटनाओं का सामना करना पड रहा है। अतः निर्मला पुतुल उपभोक्तावादी नागरी सभ्यता एवं संस्कृति की जहरीली आबो–हवा से अपनी प्रकृति तथा संस्कृति को बचाना चाहती है। जंगल की ताजा हवा, नदियों की निर्मलता, पहाडों का मौन, मिटटी का सोंधापन, फसलों की लहलहाट, हरी घास आदि के बचने पर ही मनुष्य जीवन को बचाया जा सकता है। इस अविश्वास भरे दौर में पर्यावरण को बचाए रखने की अपनी संकल्पबध्दता को बयान करती निर्मला पुतुल कहती हैं,–

''जंगल की ताजा हवा / नदियों की निर्मलता
पहाडों का मौन / गीतों की धुन
मिटटी का सोंधापन / फसलों की लहलहाट
नाचने के लिए खुला ऑगन / गाने के लिए गीत
हॅसने के लिए थोडी–सी खिलखिलाहट
रोने के लिए मुट्ठी भर एकांत / बच्चों के लिए मैदान
पशुओं के लिए हरी–हरी घास / बूढों के लिए पहाडी शान्ति
और इस अविश्वास भरे दौर में
थोडा–सा विश्वास / थोडी– सी उम्मीद / थोडे–से सपने
आओ मिलकर बचाएँ / कि इस दौर में भी बचाने को
बहुत कुछ बचा है, अब भी हमारे पास!''[14]

सारांश :

समूचे विश्व को एक ही अर्थनीति के तहत एकत्र लाना वैश्वीकरण है। जो बाजार के माध्यम से अपने साम्राज्य को फैला रहा है। वैश्वीकरण से उपजी अर्थ–केंद्रित उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य को वस्तु बना दिया। वैश्वीकरण के रंग से बेरंग हुई भाषा, साहित्य, समाज तथा संस्कृति को बचाए रखने की प्रतिबध्दता हिंदी कवियों की रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. संपा. विमलेश शर्मा तथा मालती, भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ.442
2. संपा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन : 1950–2010 पृ.205
3. संपा. शैलजा भारद्वाज, इक्कीसवीं सदी की कविता : सम्वेदना के नये स्वर, पृ.249
4. संपा. बाबू जोसेफ, भूमंडलीकरण और हिंदी कविता, पृ.39
5. संपा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन : 1950–2010, पृ.207
6. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, पृ.48
7. संपा. विमलेश शर्मा तथा मालती, भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ.447
8. संपा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन : 1950–2010, पृ.226
9. संपा. विमलेश शर्मा तथा मालती, भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ.446
10. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, पृ.36
11. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, पृ.56
12. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड के पाठ, पृ.73
13. संपा. विमलेश शर्मा तथा मालती, भाषा साहित्य और संस्कृति पृ.447
14. निर्मला पुतुल, नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ.77.